(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

षिंक मूल्य १।।) सम्पादक—श्रीराम शर्मा ।

र्ष ५ | मथुरा, १ अक्टूबर सन् १९४४ ई० | अङ्क १०

छोटी शक्ति से ही कार्य आरम्भ करो !

यदि आपके पास मन चाही वस्तुऐं नहीं है तो निराश होने की कुछ आवश्यकता नहीं । अपने पास जो टूटी फूटी चीजें हैं उन्हीं की सहायता से अपनी कला को प्रदर्शित करना आरम्भ कर दीजिये, जब चारों ओर घोर घना अन्धकार छाया हुआ होता है तो वह दीपक जिसमें छदाम की मिट्टी, आधे पैसे का तेल और दमड़ी की बत्ती है—कुल मिलाकर एक पैसे की भी पूँजी नहीं है—चमकता है और अपने प्रकाश से लोगों के रुके हुए कामों को चालू कर देता है । जब कि हजारों पैसे के मूल्यवाली वस्तुऐं चुपचाप पड़ी होती हैं, यह एक पैसे की पूँजी वाला दीपक प्रकाशवान होता है, अपनी महत्ता प्रकट करता है, लोगों का प्यारा बनता है, प्रशंसित होता है और अपने अस्तित्व को धन्य बनाता है। क्या दीपक ने कभी ऐसा रोना रोया है कि मेरे पास इतने मन तेल होता, इतने सेर रुई होती, इतना बड़ा मेरा आकार होता तो ऐसा बड़ा प्रकाश करता ? दीपक को कर्महीन नालायकों की भांति, बेकार शेखचिल्लियों के से मनसुबे बांधने की फुरसत नहीं है, वह अपनी आज की परिस्थिति हैसियत और औकात को देखता है, उसका आदर करता है और अपनी केवल मात्र एक पैसे की पूँजी से कार्य आरम्भ कर देता है । उसका कार्य छोटा है, बेशक; पर उस छोटे पन में भी सफलता का उतना ही महत्व है जितना के सूर्य और चन्द्र के चमकने की सफलता का है ।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते हैं।

(१) मैं क्या हूं — मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१५) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१६) गहना कर्मणो गतिः ।=)
(१७) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश ।=)
(१८) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(१९) आत्म गौरव की साधना ।=)
(२०) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
(२१) मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
(२२) आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
(२३) आगे बढ़ाने की तैयारी ।=)
(२४) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
(२५) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
(२६) ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग ।=)
(२७) यम-नियम ।=)
(२८) आसन और प्राणायाम ।=)
(२९) प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ।=)
(३०) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
(३१) आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ।=)
(३२) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
(३३) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
(३४) हस्त रेखा विज्ञान ।=)
(३५) विवेक सतसई ।=)
(३६) संजीवन विद्या ।=)

अन्य प्रकाशकों की कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें।

(१) सर्प विष चिकित्सा ॥)
(२) जल चिकित्सा ॥)
(३) गर्भ निरोध [संतान होना रोकना] ।-)
(४) नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ॥-)
(५) दूध से सब रोगों का शर्तिया इलाज ॥)
(६) संक्षिप्त दुग्ध चिकित्सा
(७) प्राकृतिक चिकित्सा ।)
(८) बुढ़ापा और बीमारी से बचने के सरल उपाय ।)
(९) उपवास और फलाहार चिकित्सा ॥)
(१०) मिट्टी सभी रोगों की रामबाण औषधि है ।=
(११) पृथ्वी की रोगनाशक शक्ति ।)
(१२) नवीन चिकित्सा पद्धति १।)
(१३) हमें क्या खाना चाहिए ।-)
(१४) तम्बाकू प्राण घातक विष है ।-)
(१५) धूप हवा और सरदी से आरोग्य ॥)
(१६) ज्वर चिकित्सा =)
(१७) वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव ।)
(१८) धातु दुर्बलता की चिकित्सा ॥)

नोट—कमीशन देना कतई बन्द है। आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं।

—मैनेजर "अखण्डज्योति" कार्यालय, मथुरा।

अखण्ड ज्योति !

सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित,मानव को जीना होगा॥

मथुरा १ अक्टूबर सन् १६४४ ई०

विद्या-विस्तार के लिए-आह्वान।

संसार में जितने भी बल हैं उनमें बुद्धि बल प्रधान है। मनुष्य जैसा दुर्बल प्राणी, सृष्टि के समस्त पशु पक्षियों पर शासन कर रहा है। बड़े बड़े गज ग्राह, सिंह सर्पादि शारीरिक बल में कई गुने बड़े होते हुए भी मनुष्य के सामने नत मस्तक होते हैं, अपनी हीनता स्वीकार करते हैं। इस बुद्धि बल के द्वारा ही देश और जातियां ऊंची उठती है, आगे बढ़ती हैं और समृद्ध तथा सम्पन्न बनती है। जहां बुद्धि बल का अभाव है वहां गरीबी, बेकारी, कलह, क्लेश, दुर्भाव. अज्ञान, भ्रम दुर्गुण, व्यसन, आदि नाना प्रकार की कष्ट दायक परिस्थितियां बनी रहेंगी और मनुष्य आये दिन नाना प्रकार के दुखों में पड़ा हुआ कराहता रहेगा। निस्संदेह मानव तत्व के अन्तर्गत बुद्धि की प्रधान सत्ता है। इस सत्ता के आधार पर ही वह सृष्टि का मुकुट मणि प्राणी बना हुआ है यदि यह उसके हाथ से छिन जाय तो यह शायद सियार खरगोश और बन्दर से भी कमजोर साबित हो। क्योंकि वे पशु जितना भाग दौड़ और उछल कूद सकते हैं, मनुष्य इतना भी तो नहीं कर सकता।

उन्नति और अवनति का, सुख और दुख का, दरिद्र और समृद्धि का समस्त आधार इस बुद्धि बल पर निर्भर है। यह बात सूर्य के समान प्रत्यक्ष और सत्य के समान स्पष्ट है। हम भारतीय बहुत समय से दासता, दीनता और निर्बलता से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के कष्टों को सहन कर रहे हैं। इन कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु बुद्धि बल के अभाव में कुछ कर नहीं पाते, उठते हैं और फिर लड़ खड़ा कर गिर पड़ते हैं। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक, सामजिक तथा राजनैतिक जो दुर्दशा हमारी होरही है उसका एक मात्र कारण हमारे ज्ञान बल का अभाव ही है।

पिछले दिनों की दुरवस्था का दुखदायी स्मृतियों का स्मरण करके आज भारत की अन्तरात्मा रोरही है। दुनियां कहां से कहां पहुँच गई, किन्तु हम उन्नति की घुड़ दौड़ में कितने पिछड़ गये, जिन्हें किसी समय संसार के गुरु होने का गौरव प्राप्त था वे आज काले, कुली, गदे, असभ्य आदि नामों से दुनियां भर में पुकारे जाते हैं और घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। जैसे जैसे भारत जागत जाता है वैसे ही वैसे वह अपनी दुरबस्थाओं का अनुभव करता जाता है और उनसे छुटकारा पाने के लिए बेचैनी और उद्विग्नतामयी तड़पन अनुभव करता है।

हर एक विचारशील और कर्तव्य परायण भारतीय आज अपने समाज को इस अत्यन्त गिरी हुई अवस्था में से निकालने के लिए चिन्तित है और अपनी समझ के अनुसार उपाय ढूंढ़ निकालने के लिए प्रयत्नशील है। इन जागृति और प्रयत्न की घड़ियों में हम हर एक विचारशील देश भक्त से अनुरोध करना चाहते हैं कि उन्नति और अवनति के शाश्वत और सनातन सिद्धान्तों को

गंभीरता पूर्वक समझें। बुद्धि बल के ऊपर ही सच्चा उत्थान और पतन निर्भर है। स्वाधीनता और सम्पदा माँगने से किसी को नहीं मिलती यदि मिल जाय तो ठहरती नहीं। जहां बुद्धि बल है वहां अन्य शक्तियां, अन्य सम्पदाऐं स्वयमेव खिचती चली आती हे। इस तथ्य को भली प्रकार समझते हुए देश की दुरबस्था को मिटाकर, सच्ची और स्थायी उन्नति की स्थापना करने के लिए हमें सबसे पहले और सबसे अधिक ज्ञान वृद्धि की ओर ध्यान देना होगा।

दुनियां में जिसने भी उन्नति की है बुद्धि बल से की है। भारत माता को पुनः उन्नति के शिखिर पर पहुँचाने के लिए हमें ज्ञान यज्ञ का महान अनुष्ठान करना होगा। बुद्धि दो विभागों में विभाजित हैं। एक को शिक्षा और दूसरे को विद्या कहते हैं। शिक्षा वह है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की जानकारी और चातुरी प्राप्त होती है, विद्या वह है जिसके द्वारा सद्गुण और सदभाव प्राप्त होते हैं। शिक्षा के बल से मनुष्य अच्छा व्यापारी, राजनीतिज्ञ, डाक्टर, वकील, लेखक, वक्ता, अध्यापक, अफसर आदि बनता है और विद्या के बल से चरित्रवान, महापुरुष, सेवा भावी, शान्तिप्रिय तथा प्रसन्न चित्त आदि निधियां प्राप्त करता है। स्कूल और कालेजों में आज शिक्षा दी जारही है, साहित्य का निर्माण भी इसी दिशा में होरहा है। आज के शिक्षित या शिक्षा प्रेमी व्यक्तियों की जानकारी और चातुरी निस्संदेह बढ़ जाती है वे गणित, भूगोल साहित्य, इतिहास, ज्यामित,रसायन, भूगर्भ शास्त्र, वनास्पति शास्त्र, शरीर शास्त्र, खगोल, कानून, साइंस, आर्ट आदि अनेक विषयों में जानकार हो जाते हैं और अपनी चातुरी को बढ़ा कर पैसा, पद तथा प्रतिष्ठा भी प्राप्त करते हैं, एवं ऐश आराम से अपनी जिन्दगी काट लेते हैं। इतना होते हुए भी विद्या के अभाव में शिक्षा अधूरी ही है।

विद्या वह ज्ञान है जिससे मनुष्य का चरित्र बनता है, दृष्टिकोण निर्धारित होता है, सद्उद्देश्य और सत् सिद्धान्तों को व्यवहारिक जोवन में चरितार्थ करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि शिक्षा केवल शिक्षा हो, उसके साथ विद्या का समन्वय न हो तो लाभ और हानि की तुलना करने पर मालूम होता उससे लाभ कम और हानि अधिक है। अशिक्षित मनुष्य की शक्ति थोड़ी होती है वह बदमाश हो तो उसकी बदमाशी छोटे दायरे में रहेगी और जल्दी खुल भी जायगी। एक गवार चोर अपने आस पास के लोगों का पैसा चुरा सकता है थोड़े दिनों में उसका भेद सब पर प्रकट होजाता है और फिर लोग उससे सावधान होजाते हैं, गँवार चोर का यह छोटा सा दायरा है, परन्तु शिक्षित चोर इससे हजार गुना अधिक भयंकर होता है। वह अपनी बुद्धि की चासनी चढ़ाकर कानूनी शिकंजे से बचता हुआ लोगों को ठगने के बड़े बड़े कारखाने खड़े कर सकता है। होटलों की आड़ में व्यभिचार, कार्निवालों की आड में जुआ, रेस्टोरेण्टों की आड़ में मद्यपान के मार्ग निष्कंटक हो सकता है। विधवाश्रम के नाम पर स्त्रियों का व्यापार किया जा सकता है भड़कीले विज्ञापन देकर दो आने की चीज के दस रुपये वसूल किये जा सकते हैं,सिद्धान्तों के नाम पर अत्यन्त गर्हित काम होते हैं। बुद्धि की पालिस करके निकृष्ट कार्यों को ऐसा सुन्दर चमकीला और निर्दोष दिखा दिया जाता है कि कानून का उस पर कुछ वश नहीं चलता, साधारण लोग इस जाल को पहचान भी नहीं पाते और वह गर्हित कार्य चलते रहते हैं। इस प्रकार केवल शिक्षा से अनर्थों की ही वृद्धि होती है, उससे मनुष्य की प्रवृत्ति, कलुषित, स्वार्थी, शोषक एवं पर पीड़क होती जाती है। ऐसा आदमी अपने निजी आन्तरिक जीवन में बड़ा ही संदिग्ध, अविश्वासी, रूखा, निष्ठुर और असंतुष्ट रहता है। परिवार के व्यक्ति ही उसे दुश्मन मालूम होते हैं। ईर्षा, कलह, क्रोध, चिन्ता अशान्ति से उसका अन्तःकरण सदैव जलता रहता है। ऐसे व्यक्तियों के द्वारा देश या जाति की भला

क्या सेवा हो सकती है ? वे तो कुल्हाड़ी के बेंट बन कर अपनों पर और अधिक कहर बरसाने के कारण ही बन सकते हैं।

किन्तु विद्या में यह बात नहीं है। मनुष्यता की शिक्षा, कर्तव्य की शिक्षा, धर्म की शिक्षा—जिसे विद्या कहते हैं, मनुष्य के हृदय कमल को विकसित करने वाली है। विद्या के अंग उपांग—नम्रता, मधुर भाषण, संयम, साहस, एकता, मितव्ययता, सादगी, सेवा, सहानुभूति, ईमानदारी, उदारता, न्यायशीलता, प्रेम, श्रम, सावधानी, सचाई तपश्चर्या आदि हैं। इन सद्गुणों और सत्कार्यों के ऊपर जिसके जीवन की आधार शिला रखी हुई है वह मनुष्य भले ही अक्षर ज्ञान से रहित हो, तो भी वह निजी जीवन सदा स्वस्थ, संतुष्ट और प्रसन्न चित्त रहेगा। उसके द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मार्गों द्वारा देश और जाति की सेवा होती रहेगी। वह जो भी काम करेगा वह अन्ततः दूसरों को उठाने वाला, उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाला ही होगा।

हम पहले कह चुके हैं कि बुद्धि बल मनुष्य जीवन का प्रधान तत्व है। बुद्धि बल में विद्या प्रधान है, शिक्षा उसकी पूरक है। शिक्षा के अभाव में भी विद्या बहुत कुछ है किन्तु विद्या के अभाव में शिक्षा कुछ नहीं है वरन् उलटा हानि कारक है। विद्या हृदय है और शिक्षा मस्तिष्क है। हृदय और मस्तिष्क के दोनों तारों के संयोग से जो विद्युत शक्ति बनती है वही विद्या है। इस विद्या के आधार पर ही जातियां उठती हैं, देश उन्नति करते हैं। पारस्परिक एकता सहायता और सद्भावना बढ़ती है। यह विद्या ही लौकिक और पारलौकिक उन्नति की जड़ है।

हमारे देश में शिक्षा के प्रचार के लिए संतोष जनक प्रयत्न होरहा है किन्तु विद्या की ओर सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखा जारहा है। मनुष्योचित् सद्गुणों और सद्विचारों को—विद्या को—फैलाने के लिए शिक्षा से भी अधिक प्रयत्न की आवश्यकता है क्यों कि हमारी उन्नति और समृद्धि का मूल भूत आधार वही है। जड़ को उपेक्षा करके पत्तों को सींचने से काम न चलेगा। शिक्षा क्लर्कों को जन्म दे सकता है किन्तु विद्या के गर्भ से महा पुरुष पैदा होते हैं, जिनकी वृद्धि ही देश की सच्ची समृद्धि है।

शिक्षा की व्यवस्था सरकारी अर्धसरकारी तथा धनीमानी व्यक्तियों की सहायता में हो सकती है। किन्तु विद्या प्रचार की जिम्मेदारी कर्मनिष्ठ, तपस्वी, सदाचारी और ऋषि कल्प ब्रह्मवेत्ता लोग ही अपने ऊपर उठा सकते हैं। आज युग निर्माण की घड़ी है। इस महत्व पूर्ण घड़ी में अखंडज्योति अपने परिवार की समस्त ऋषि कल्प आत्माओं का आवाहन करती है और उनके सामने अपनी सम्पूर्ण आग्रह शक्ति के साथ यह अनुरोध करती है कि मनुष्यों में मनुष्यता का प्रचार करने के लिए—मानव जाति में विद्या का विस्तार करने के लिए आगे बढ़ें और अपने तुच्छ स्वार्थों को छोड़कर देश जाति और समस्त विश्व का सच्चा कल्याण करने वाले कार्यक्रम में जुट जावें। यदि हमारे परिवार की महत्व पूर्ण आत्माऐं अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ विद्या प्रचार में प्रवृत्त हों तो बहुत थोड़े समय में ऐसे असंख्य बहुमूल्य नर रत्नों का निर्माण किया जासकता है जिनको अपने अंचल में भरकर भारत माता निहाल होजाय और अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त कर सके। क्या हमारे आव्हान का प्रबुद्ध आत्माऐं समुचित प्रकार से उत्तर देंगी ?

लड़कपन स्वर्गीय आनन्द का समय है। जवानी धन कमाने का समय है। किन्तु बुढ़ापा केवल संचित किए हुए धन से सुख ही प्राप्त करने का समय नहीं है; बल्कि ईश्वर का भजन का भी समय है।

× × ×

ग्रहस्थ-योग ।

'योग' का अर्थ है—'जोड़' 'मिलना'। मनुष्य की साधारण स्थिति ऐसी होती है जिसमें वह अपूर्ण होता है। इस अपूर्णता को मिटाने के लिए वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने आपको जोड़कर अधिक शक्ति का संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है और उस सामर्थ्य के बल से अपूर्णता को दूर कर पूर्णता की ओर तीव्र गति से बढ़ता जाता है, यही योग का उद्देश्य है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोग, राजयोग, जपयोग, लययोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, ऋजुयोग, महायाग, कुंडलिनी योग, बुद्धियोग, समत्वयोग, ध्यानयोग, प्राणयोग, सांख्ययोग, जड़योग, सूर्ययोग, चन्द्रयोग, सहज-योग, प्रणवयोग, नित्ययोग, आदि ८४ प्रसिद्ध योग और ७०० अप्रसिद्ध योग हैं। इन बिभिन्न योगों की कार्यप्रणाली, विधि व्यवस्था और साधना पद्धति एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है तो भी इन सबकी जड़ में एक ही तथ्य काम कर रहा है। माध्यम सबके अलग अलग हैं पर उन सभी माध्यमों द्वारा एक ही तत्व ग्रहण किया जाता है। तुच्छता से महनता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर, असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर जो प्रगति होती है उसी का नाम योग है। अणु आत्मा का परम × आत्मा बनने का प्रयत्न ही योग है। यह प्रयत्न जिन जिन मार्गों से होता है उन्हें योग मार्ग कहते हैं।

एक ही स्थान तक पहुंचने के लिए विभिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग होते हैं, आत्म विस्तार के भी अनेक मार्ग है। इन मार्गों में स्थूल दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से इनमें पूर्ण रूपेण एकता है। जैसे भूख बुझाने के लिए कोई रोटी, कोई चावल, कोई दलिया, कोई मिठाई, कोई फल कोई मांस खाता है। यह सब चीजें एक दूसरे से बिलकुल पृथक प्रकार की हैं तो भी इन सब से "भूख मिटाना" यह एक ही उद्देश्य पूर्ण होता है। इसी प्रकार योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है आत्म भाव को विस्तृत करना—तुच्छता को महानता की पूँछ के साथ बांध देना।

अनेक प्रकार के योगों में एक योग "गृहस्थयोग" भी है। गंभीरता पूर्वक इसके ऊपर जितना ही विचार किया जाता है यह उतना ही अधिक महत्व पूर्ण, सर्व सुलभ तथा स्वल्प श्रम साध्य है। इतना होते हुए भी इससे प्राप्त होने वाली जो सिद्धि है वह अन्य किसी भी योग से कम नहीं वरन् अधिक ही है। ग्रहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि और वृद्धि करने वाला है, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास यह तीनों ही आश्रम ग्रहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख शान्तिमय बनाने के लिए हैं। ब्रह्मचारी इस लिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी ग्रहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो। वानप्रस्थ और सन्यासी लोग लोक हित की साधना करते हैं, संसार को अधिक सुख शान्ति मय बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह "लोक" और "संसार" क्या है? दूसरे शब्दों में ग्रहस्थाश्रम ही है। तीनों आश्रम एक ओर और ग्रहस्थ आश्रम दूसरी ओर यह दोनों पलड़े बराबर हैं। यदि ग्रहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय तो अन्य तीनों आश्रमों की मृत्यु ही समझिए।

ग्रहस्थ धर्म का पालन करना धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है। लिखा है कि संतान के बिना पितर नरक को जाते हैं उनकी सद्गति नहीं होती। लिखा है कि संतान उत्पन्न किये बिना पितृ ऋण से छुटकारा नहीं मिलता। कहते हैं कि जिसके संतति न हो उसका प्रातःकाल मुख देखने से पाप लगता है। इस प्रकार के और भी अनेक मन्तव्य हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं जिनका तात्पर्य यह है कि ग्रहस्थ धर्म का पालन

करना आवश्यक है। इतना जोर क्यों दिया गया है। इस बात पर जब तात्विक दृष्टि से गंभीर विवेचना की जाती है तब प्रकट होता है कि गृहस्थ धर्म एक प्रकार का योग साधना है जिससे आत्मिक उन्नति होती है, स्वर्ग मिलता है, मुक्ति प्राप्त होती है और ब्रह्म निर्वाण की सिद्धि मिलती है। प्राचीन समय में अधिकांश ऋषि गृहस्थ थे। वशिष्ठ जी के सौ पुत्र थे, अत्रि जी की स्त्री अनुसूया थीं, गौतम की पत्नी अहिल्या थीं, जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे, च्यवन की स्त्री सुकन्या थी, याज्ञवल्क की दो स्त्री गार्गी और मैत्रेयी थीं, लोमश के पुत्र शृङ्गीऋषि थे। वृद्धावस्था में सन्यास लिया हो यह बात दूसरी है परन्तु प्राचीन काल में जितने भी ऋषि हुए हैं वे प्रायः सभी गृहस्थ रहे हैं। गृहस्थ में ही उन्होंने तप किये हैं और ब्रह्म निर्वाण पाया है। योगिराज कृष्ण और योगेश्वर शंकर दोनों को ही हम गृहस्थ रूप में देखते हैं। प्राचीन काल में बाल रखाने, नंगे बदन रहने, खड़ाऊ पहनने, मृगछाला बिछाने का आम-रिवाज था, घना आबादी न होने के कारण छोटे गांव और छोटी कुटियां होती थी। इन चिन्हों के आधार पर गृहस्थ ऋषियों को गृहत्यागी मानना अपने अज्ञान का प्रदर्शन करना है।

आत्मोन्नति करने के लिए गृहस्थ धर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक और सर्व सुलभ योग है। जब तक लड़का अकेला रहता है तब तक उसकी आत्म भावना का दायरा छोटा रहता है। वह अपने ही खाने, पहनने, पढ़ने, खेलने तथा प्रसन्न रहने की सोचता है उसका कार्य क्षेत्र अपने आप तक ही सीमित रहता है। जब विवाह होजाता है तो यह दायरा बढ़ता है, वह अपनी पत्नी की सुख सुविधाओं के बारे में सोचने लगता है, अपने खर्च और मर्जी पर प्रतिबन्ध लगाकर पत्नी की आवश्यकताएं पूरी करता है, उसकी सेवा सहायता और प्रसन्नता में अपनी शक्तियों को खर्च करता है। कहने का तात्पर्य यह कि आत्म भाव की सीमा बढ़ती है, एक से बढ़कर दो तक आत्मीयता फैलती है। इसके बाद एक छोटे शिशु का जन्म होता है। इस बालक की सेवा शुश्रूषा और पालन पोषण में निस्वार्थ भाव से इतना मनोयोग लगता है कि अपनी निजी सुख सुविधाओं का ध्यान मनुष्य भूल जाता है और बच्चे की सुविधा का ध्यान रखता है। इस प्रकार वह सीमा दो से बढ़कर तीन होती है। क्रमशः यह मर्यादा बढ़ती है। पिता कोई मधुर मिष्ठान्न लाता है तो उसे खुद नहीं खाता वरन् बच्चों को बांट देता है, खुद कठिनाई में रह कर भी बालकों की तन्दुरुस्ती, शिक्षा और प्रसन्नता का ध्यान रखता है। दिन दिन खुद गर्जी के ऊपर अंकुश लगता जाता है, आत्म संयम सीखता जाता है और स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, परिजन आदि में अपनी आत्मीयता बढ़ाता जाता है। क्रमशः आत्मोन्नति की ओर चलता जाता है।

भगवान मनु का कथन है कि—"पुरुष, उसकी पत्नी और सन्तान मिलाकर ही एक "पूरा मनुष्य होता है।" जब तक यह रूप नहीं होता तब तक वह अधकचरा, अधूरा और खंडित मनुष्य है। जैसे प्रवेशिका परीक्षा पास किये बिना कालेज में प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार गृहस्थ की शिक्षा पाये बिना वानप्रस्थ सन्यास आदि में प्रवेश करना कठिन है। आत्मीयता का दायरा क्रमशः ही बढ़ता, अकेले से, पति पत्नी दो में, फिर बालक के साथ तीन में, कुटुम्ब में, सम्बन्धियों में, पड़ौसियों में, गांव, प्रान्त, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है, आगे चल कर सारी मनुष्य जाति में आत्मभाव फैलता है फिर पशु पक्षियों में, कीट पतंगों में, जड़ चैतन्य में यह आत्मभाव विकसित होजाता है। जो प्रगति एक से बढ़कर दो में, दो से तीन में हुई थी, वही उन्नति धीरे धीरे आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण चर अचर में आत्म सत्ता को ही समाया देखता है, उसे परम आत्मा की दिव्य ज्योति सर्वत्र जगमगाती दीखती है। पत्नी

क अपने मन को जितने अंशों में फैलाया जाता है उतने अंशों में अपनी खुदगर्जी पर संयम होता है। बाल बच्चों के होने पर यह आत्म संयम और अधिक बढ़ता है अन्त में जीव पूर्ण तथा आत्म संयमी हो जाता है। दूसरों के लिए अपने आपको भूलने का अभ्यास क्रमशः इतना अधिक पुष्ट हो जाता है कि अपना कुछ रहता ही नहीं, सब कुछ बिराना हो जाता है। "मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर" की ध्वनि उसके अन्दर से निकलने लगती है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। "मैं" का अन्त होने से "तू" ही शेष रहता है। ग्रहस्थ योग की छोटी सी सर्व सुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा, परमात्मा बन जाती है। अपूर्णता से छुटकारा पाकर पूर्णता उपलब्ध करती है और योग का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो जाता है।

अगले अङ्क में ग्रहस्थ योग्य की साधना के संबध में लिखेंगे। पाठक प्रतीक्षा करें।

तुम जो दूसरे से चाहते हो, वही दूसरे को पहले तुम दो, तब तुम्हें अनन्त गुणा होकर वही मिलेगा। सेवा चाहते हो तो सेवा करो, मान चाहते हो तो मान दो, यश चाहते हो तो यश दो। ठीक समझ लो दुःख देते हो तो बदले में तुम्हें दुःख ही मिलेगा, अपमान करते हो बदले में तुम्हें अपमान ही मिलेगा। जो तुम दोगे वही तुम्हें मिलेगा।

× × ×

मनुष्य पुण्य का फल सुख चाहता है,परन्तु पुण्य नहीं करना चाहता और पाप का फल दुःख नहीं चाहता पर पाप नहीं छोड़ना चाहता। इसीलिये सुख नहीं मिलता और दुःख भोगना पड़ता है।

× × ×

पुस्तक-प्रेम।

दार्शनिक एमर्सन कहा करते थे, कि "पुस्तकों का स्नेह ईश्वर के राज्य में पहुँचने का विमान है।" निस्संदेह मनुष्य की अपूर्णता को पूर्णता की ओर ले जाने में, अज्ञ से विज्ञ बनाने में जितना काम पुस्तक ने किया उतना और पदार्थ द्वारा नहीं हुआ। श्रेष्ठ महा पुरुषों, दिव्य दार्शनिकों और खोज करने वाले तपस्वियों के घोर परिश्रम द्वारा प्राप्त हुए बहुमूल्य रत्न पुस्तकों की तिजोरी में बन्द हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि इतने अनुभव पूर्ण ज्ञान को हम इतनी आसानी से पुस्तकों द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

सिसरो ने कहा है कि अच्छी पुस्तकों का घर में इकट्ठा करना मानो घर को देव मन्दिर बना लेना है। कार्लाईल ने लिखा है—"जिन घरों में अच्छी किताबें नहीं वे जीवित मुर्दों के रहने के कब्रिस्थान हैं।" जीवन कला एवं सरसता का समावेश पुस्तकों की सहायता से होता है। जिन्दगी की पेचीदा समस्याओं के ऊपर विचार करने के लिए पुस्तकें प्रोत्साहन देती हैं और प्रकाश—दीप की भांति सत्मार्ग की ओर हमारा पथ प्रदर्शन करती हैं।

कैम्बिस ने एक बार लोगों को उपदेश दिया था कि—'अपना कोट बेचकर भी अच्छी किताबें खरीदो।' उनका कहना था कि कोट के अभाव में जाड़े के कारण आपके शरीर को कुछ कष्ट होगा, परन्तु पुस्तकों के अभाव में आत्मा को भूखा मरना पड़ेगा। भौतिक जगत की जड़ता नीरसता और वहिरङ्गता की कर्कशता से छुड़ाने की शक्ति पुस्तकों में हैं उन्हीं में जीवन का अमृत रस भरा हुआ है जिसे पान करके तुच्छ जीव से ऊँचे उठकर हम महा मानव बनते हैं। हर मनुष्य को पुस्तक प्रेमी होना चाहिए विचार पूर्ण सत् ग्रन्थों का संग्रह और स्वाध्याय करना अपने को पशुता से देवत्व की ओर ले जाना का स्पष्ट चिन्ह है। ———

हीनत्व की भावना को दूर कीजिए।

(प्रोफेसर श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम. ए. डी. लिट्.)

निज जीवन के प्रति जैसी हमारी भावना होगी उसके अनुसार ही हमारा मार्ग भी मृदु अथवा कर्कश होगा। यदि एक व्यक्ति सुखी एवं प्रसन्न है तो वह इसी कारण कि वह सदा सर्वदा शुभ भावना में मग्न रहता है। यदि कोई व्यक्ति क्लान्त है तो इसका प्रधान कारण यही है कि वह चिंता, निराशा एवं क्षोभ की कुत्सित भावना में फँसा रहता है। सुख दुःख आशा निराशा मन की दो भूमिकाएँ हैं तथा इन दोनों की प्रतीति बहुत कुछ मनुष्य के व्यक्तिगत स्वभाव, विचार धारा, मानसिक दृष्टिकोण, तथा शिक्षा दीक्षा पर निर्भर है। एक व्यक्ति आशावाद के स्फूर्तिदायक वातावरण में जन्म लेता है, उत्साह की शुभ परिपुष्ट शिक्षा ग्रहण करता है, उत्कृष्ट विचार धारा में तन्मय रहता है और श्रद्धापूर्वक अपने उज्ज्वल भविष्य पर दृढ़ विश्वास रखता है। दूसरा व्यक्ति प्रतिकूल प्रसङ्गों में लिप्त रहता है, उसका जीवन पुष्प अर्ध विकसित अवस्था में ही मुरझाने लगता है, वह अयोग्य वृत्तियों तथा अनिष्ट विचारों में ग्रसित होने के कारण सदैव खिन्न एवं क्षुब्ध रहता है। अपनी अवस्थाओं के लिए दोनों स्वयं ही उत्तर दाता हैं।

हमारी शिक्षा, प्राकृति अभिलाषा, संस्कार एवं कल्पना राज्य पर हमारा भविष्य-ऐश्वर्य-ईश्वरत्व टिका है। जिस व्यक्ति को यह शिक्षा मिली है कि 'हे! मनुष्य, तू महान् है, उत्कृष्ट तत्त्वों का स्वामी है, ईश्वर के दैवी उद्देश्य की सिद्धि के लिए इस आनन्द निकेतन सृष्टि में आया है, तू सफलता के लिए-पूर्ण विजय के लिए, सुख स्वास्थ्य के निमित्त बनाया गया है और इससे तुझे कोई विहीन नहीं कर सकता। शक्तिसागर परमात्मा की यह इच्छा कदापि नहीं है कि तू अपनी परिस्थिति के हाथ का कठपुतला बना रहे, अपनी आसपास की दशा का गुलाम बना रहे। ऐ अक्षय, अनन्त, अविनाशी आत्मा! तू तुच्छ नहीं, महान् है। तुझे किसी अशक्तता का अनुभव नहीं करना है। तू अनन्त शक्तिशाली है। जिन साधनों को लेकर तू अवतीर्ण हुआ है वे अचूक हैं। तेरी मानसिक शक्तियां तेरी सेविकाएँ हैं। तू जो कुछ चाहेगा, वे अवश्य प्रदान करेंगी। तू उन पर विश्वास रख वे उत्तम से उत्तम वस्तु तुझे प्रदान करेंगी। तुम साक्षात् पारस हो जिस वस्तु को स्पर्श करोगे उत्तम वर्ण की कर दोगे, तुम्हारा मन कल्पवृक्ष है जो तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करेगा; तुम अमृत स्वरूप हो। तुम्हारी विचार शक्ति आनन्द, उत्साह और तेज की वर्षा करेगी।" इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ युवक संसार का संचालन करता है। उसके दर्शन मात्र से मृत प्राय व्यक्तियों में नवजीवन संचार होता है। संसार ऐसे व्यक्ति के लिए स्वयं ही मार्ग साफ कर देता है। संसार में वे शक्ति का प्रकाश करते हैं। सब विद्याओं में यही सर्व शिरोमणि है क्योंकि यह हमारे जीवन को स्थायी सफलता और विजय से विभूषित करती है।

एक दूसरा युवक है जिसे निषेधात्मक वायुमंडल में, दुःख, दरिद्रता, द्रोह, वैर, विरोध के कुत्सित मनःक्षेत्र में उठना पड़ा है, जो संकीर्णता और सीमाबंधन में ही बड़ा हुआ है। ऐसा मनुष्य अंधकार मय निराशाजनक विचार रक्खेगा। वह कहता है कि "मैं बेकार हूँ कमजोर हूं। हे समृद्धि! तू मुझसे दूर रह। मैं इस योग्य नहीं कि तुझे प्राप्त कर सकूं। मेरा जीवन वेदना, लाचारी और शंका का जीवन है। मैं ना चीज़ हूं-क्षुद्र हूं।" जो व्यक्ति ऐसी शिक्षा पाकर संसार में प्रवेश करता है उसका सर्वनाश बहुत दूर नहीं है। उसके संशय, उसके

भय, उसके आत्मविश्वास की न्यूनता उसकी डरपोक और निषेधात्मक शिक्षा दीक्षा उसकी कार्यशक्ति को पंगु बना देती हैं।

संसार में सबसे उत्कृष्ट वह शिक्षा है जो मनुष्य को अपना हितैषी बनना सिखावे। जो उसे बार२ सिखलावे कि तुम शरीर नहीं हो, जीव नहीं हो, क्षुद्र नहीं हो; वरन् आत्मा—महान् आत्मा—परम् आत्मा हो। तुममें दैवीतत्त्व का अंश विद्यमान है, पूर्णता भरी हुई है, तुम दैवी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो।

तुम निज भावना में परिवर्तन करो। अपनी हीनत्व की भावना पर विजय प्राप्त करने के लिए मन के विभिन्न व्यापार देखने वाले द्रष्टा बनो। सर्व प्रथम अन्तःकरण में जमी हुई निम्न प्रवृति का उन्मूलन करो। तुम चाहे संसार में किसी भी स्थिति में क्यों न हो अपने हित की भावना सदैव कल्याणकारी है। जब तुम अपने अंतस्तल प्रदेश में शुभ भावना जागृत कर लोगे, विद्युत वेग से प्रवाहित होने वाली मन की क्रिया को हितैषिता की दिव्य ज्योति से देदीप्यमान कर सकोगे तो तुम्हें पूर्ण ज्ञान तथा अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा।

जो मनुष्य अपने अन्तःकरण की निकृष्ट भावनाओं को तिलांजलि देकर उच्च आत्म प्रदेश में प्रविष्ट हो जाता है वह अपने हृदय में प्रवाहित होने वाले गुप्त सामर्थ्य के अवरुद्ध स्रोत को तीव्र कर देता है। यह अवस्था शनैः शनैः अभ्यास से प्राप्त होती है। जब जब अनिष्ट मनोवेग चित्त को व्याकुल करते हैं तब तब द्रष्टा मन से पृथक् होकर दुष्कामनाओं के प्रवाह पर अपने ज्ञान चक्षु स्थिर करता है, विचार शृंखला टूट जाती है और समस्त मानस व्यथाओं का अन्त हो जाता है।

तीव्र प्रवाह में प्रवाहित क्षुद्र तिनके की तरह बहाव में यों ही बह जाने के लिए तुम नहीं बने हो। तुम महान् पिता के महान् पुत्र हो। तुम्हें पुष्ट हाथ मिले हैं, उत्कृष्ट मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियां उपलब्ध हैं जिनके द्वारा तुम स्वयं स्वमार्ग निश्चित कर सकते हो। तुम स्वय ही अपने भाग्य की रचना करते हो। भाग्य चक्र की गति में तुम्हारा अपना ही उत्तरदायित्व निहित है। तुम जो बोते हो वही काटते हो। अपनी उन्नति का मार्ग तुम्हें स्वयं ही तय करना है। तुम्हारे मस्तिष्क में जिस अद्भुत प्रतिभा के बीज पड़े हैं उन्हें स्वयं ही उद्योग के जल से अंकुरित, पल्लवित, एवं पुष्पित करना है। अपनी आत्मा को तुम्हें स्वयं ही जागृत करना है, मनोविकारों के तूफ़ान से तुम स्वयं ही अपने आप को मुक्त कर सकते हो। कोई वाह्यशक्ति तुम्हारी सहायता न करेगी जब तक तुम अपने आत्म तेज को प्रकट नहीं कर लेते।

तुम संसार में राज्य करने को उद्देश्य से भेजे गए हो। तुम्हें प्रकृति की शक्तियों को वश में करना है, उन पर शासन करना है। यदि तुम अपने आप को निर्बल मानते रहोगे, अपना मूल्य कम आँकते रहोगे तो किस प्रकार शासन कर सकोगे? आज तुम अपने को कमज़ोर समझ समझ कर हीनत्व की भावना के वशीभूत हो किन्तु इसे भूल कर—हृदय से देश निकाला दे देने पर ही—तुम्हारी सफलता निर्भर है।

अन्त शक्तियों के स्वामी, मनुष्य, उठ! जागृत हो! और अपनी असीमता का दर्शन कर। अपने सूर्य के समान प्रकाशक मनःतेज को प्रकाशित कर! भय, शोक, चिंता, निराशा को निकाल फेंक। अनिष्ट वृत्तियों पर दृढ़ता पूर्वक शासन कर। अपने स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का आन्तरिक मल निकाल फेंक। उच्च भावावेश से अपने समृद्ध विचार प्रकाशित कर। वही तेरा वास्तविक स्वरूप है।

जिस व्यक्ति ने अपने हीनत्व को भावना को सर्वदा के निमित्त तिलांजली; देकर। अन्तस्थित शक्तियों के केन्द्र को सशक्त कर लिया है वह जिस समय ध्यानावस्थित होता है अपने आन्तरिक प्रदेश में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उसके वास्तविक स्वरूप में

देखता है, उस समय उसे अपनी दिव्य शक्तियों की पूर्णता का ज्ञान हो जाता है।

प्रिय पाठक ! तुम दीन हीन कदापि नहीं हो, असमर्थ और कायर नहीं हो, दुर्बल नहीं हो, निस्तेज नहीं हो। तुम अमृत सन्तान हो, आत्म तेज के केन्द्र हो। तुम मोह और संशय के आवेश में मत्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल बैठे हो। उठो ! जागृत हो जाओ। अपनी बिखरी शक्तियों को पुनः एकत्रित करो। उन्हें परिपुष्ट करो। ज्यों ज्यों तुम अपनी खोई हुई शक्तियों को प्राप्त करते जाओगे त्यों त्यों तुम में दृढ़ता की अभिवृद्धि होगी, संकल्पों में बल आयेगा और तुम्हारी मनोनीत वस्तु एक दिन तुम्हारी गोद में आ उपस्थित होगी। अपने हृदयस्थ आन्तरिक प्रदेश के खुलते ही तुम अखंड आनन्द का अनुभव कर सकोगे और आत्म के विशुद्ध प्रकाश में तुम्हें ज्ञान होगा कि तुम सर्वोपरि हो, महान हो, मनःस्ताप से ऊँचे हो। वासनाएँ तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती। तुम उन पर आत्म-परीक्षा द्वारा शासन कर सकते हो।

आत्मोन्नति का वीर योद्धा मानसिक केन्द्र से भय और स्वार्थ की हीन वासनाओं को दूर करता हुआ ज्ञान प्राप्ति में संलग्न होकर शान्त के उच्चतम शिखर पर दृष्टि लगाये हुए ऊँचे और ऊँचे चढ़ता जाता है और एक दिन अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच कर परम-शान्ति का भोग करता है।

तुम भी तो आत्मोन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हो। फिर अपने मानसिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त क्यों नहीं कर लेते ? कायरता, चिन्ता, हीनत्व की कुकल्पना (अशुभ भावना) का उन्मूलन कर डालो। तुम्हारी कायरता तुम्हारे शरीर में नहीं, तुम्हारे मन में है। मन की अयोग्य वृत्ति को उत्साहित कर तुमने विवेक का ह्रास कर डाला। मोह से कायरता की उत्पत्ति हुई और अभद्र प्रसङ्गों में अहर्निश व्यस्त रहने के कारण तुम स्वयं अपने ही बन्धन में फँस गये। अब तुम स्वयं ही इस बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। स्वयं ही महादधि से छुटकारा प्राप्त कर सकते हो। मन में उन्नति की भावना को आरूढ़ करो। जितने वेग से तुम अपनी श्रेष्ठता में विश्वास करोगे तदनुसार ही उत्कृष्ट वृत्ति की रचना होगी। यदि तुमने निर्भयता, उन्मुक्ति, समृद्धि की भावनाओं को मनःकेन्द्र में बसा लिया है तो उसी प्रकार की किरणें तुम्हारे अन्तर्सूर्य से प्रकाशित होंगी और तुम हीनत्व की दलदल से मुक्त हो जाओगे।

रात्रि में शान्तचित्त हो, नेत्र मूंद कर बैठो और मन को निम्न लिखित आत्मसंकेत (Auto-suggestion) दोः—दृढ़ता पूर्वक कहो—"मैं पूर्ण निर्भय आत्म तत्त्व हूं। शुद्ध ब्रह्म में निवास करता हूं और संसार के मायामोह से नित्य प्रति ऊँचा उठता चला जा रहा हूं। अब मैं अपने को किसी से दीन हीन नहीं समझता; और न वैसे विचार ही फैलाता हूं। मैं परमात्मा के आनन्द में विहार करता हूं। मैंने हृदय को स्वच्छ कर लिया है। भय को ज्ञानाग्नि से भस्मीभूत कर आत्मा को विशुद्ध कर लिया है। अब मैं दुष्ट विचारों का गुलाम नहीं। अपना स्वयं स्वामी हूँ। साहस के शुभ विचार ही मेरे मन.स्तल में प्रवेश करते हैं।"

इस संदेश को पी लो। आत्मा को उससे सराबोर कर डालो। चित्तवृत्ति को इतने बल से उन्नति की भावना पर दृढ़ करो कि वही स्थायी चित्तवृत्ति बन जाय। आत्म निरीक्षण करते रहो कि कहीं चुपचाप फिर कोई नाशकारी विचार किसी अज्ञात छिद्र से न घुस जाय। जो व्यक्ति आत्म-निरीक्षण कर सतर्क रहते हैं वे अपूर्व दिव्य बल संग्रह कर लेते हैं। प्रतिकूलता इन तक फटकती हुई डरती रहती है।

समझदारी की शिक्षा ।

(पं० रामदयाल शर्मा, तिलहर)

१—एक नौका वायु ठीक न होने से धीमी चाल से चलने लगी । तब खेने वाले मल्लाहों ने नौका के मुखिया से नौका में भरा हुआ अनावश्यक सामान समुद्र में डाल देने की आज्ञा मांगी, मुखिया ने भी इस बात को ठीक समझ कर आज्ञा दे दी । तदनुसार मल्लाहों ने अनावश्यक सामान समुद्र में फेंक दिया । बोझ कम हो जाने से नौका भी शीघ्रता से चलने लगी । किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ज़ोर की हवा चलने लगी बोझ कम होने से नौका डगमगा कर औंधी हो गई और सब मनुष्य डूबकर मर गये ।

तात्पर्य्य—एक काम करते समय यह विचार रखना चाहिये कि दूसरा बिगड़ तो नहीं रहा है या दूसरे पर कुप्रभाव तो न पड़ेगा ।

२—एक जहाज़ समुद्र में यात्रियों से भरा हुआ जारहा था कि अकस्मात वह फूट गया और उसमें पानी भरने लगा । थोड़ी देर में वह डूबने वाला था । इस कारण उसमें के यात्रीगण अपनी अपनी बहुमूल्य वस्तुऐं तथा धन दौलत अपनी पीठ कमर आदि से बांध रहे थे । उन यात्रियों में एक विख्यात कवि भी था वह निश्चिन्त हो बैठा था । यह देखकर उनमें से एक यात्री उस कवि से कहने लगा 'कविराज जी ! आपके पास द्रव्य तो बहुत है फिर आप कमर से क्यों नहीं बांध लेते ? कविने उत्तर दिया 'मेरी मूल्यवान् और अन्यावश्यक वस्तु मेरे पास ही है । थोड़ी देर में जब ज़हाज़ बिल्कुल डूबने को था सब यात्री समुद्र में कूद पड़े । उनमें जिन्हें तैरना याद था तैरने लगे, किन्तु शरीर से धन दौलत आदि भारी चीज़ें बंधी हुई थी । इससे बोझ के कारण वे डूब गये । कवि भी अच्छा तैरना जानता था, उसने कोई भी भारी वस्तु शरीर पर बांधी भी न थी इससे वह सुगमता से किनारे पर पहुंच गया निकट ही एक अच्छा ग्राम था उसमें जा पहुंचा वहां के निवासी कवि की कीर्ति पहिले ही सुन चुके थे इस कारण उन्होंने उसका बहुत सत्कार किया थोड़े समय में वह फिर धनवान बन गया और सुख से रहने लगा ।

तात्पर्य्य—सब धनों में विद्याधन श्रेष्ठ धन है । इस कारण दैविक आपत्ति से मुक्त हो जाने पर विद्वान पुरुष सांसारिक द्रव्य चाहे जहां चाहे जितना प्राप्त कर सकते हैं ।

३—वर्षा ऋतु के दिन थे—वर्षा अधिक होने से चारों ओर खासी कीचड़ हो रही थी । ऐसे समय में एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी लिये जा रहा था, गाड़ी का एक ओर का पहिया कीचड़ में फँस गया, तब गाड़ीवान आकाश की ओर निहार कर हाथ जोड़कर परमेश्वर से प्रार्थना करने लगा हे परमात्मा मैं अत्यन्त दीन हूं इस कष्ट से मुझे बचाइये, यह शब्द सुनते ही परमेश्वर ने आकाश की ओर से देखा तो गाड़ीवान आनन्द पूर्वक गाड़ी पर बैठे हुए ही प्राथना कर रहा है यह साफ़ दिखाई दिया तब ईश्वर ने गाड़ीवान से कहा रे मूर्ख तू आलसी के समान बन कर मत बैठ । उठ और बैलों को लकड़ी से पीट और पहिले अपने कन्धे का बल लगा तब मैं तुझे सहायता करूँगा ।निरुद्योगी मनुष्यों को मैं सहायता नहीं करता हूँ । यह आज्ञा पाकर गाड़ीवान ने वैसा ही किया जिसके कारण बात की बात में पहिया कीचड़ से निकल आया ।

तात्पर्य्य—ईश्वर की सहायता चाहने वालों को प्रथम स्वयं प्रयत्न करना चाहिये क्यों कि आलसी मनुष्यों की ईश्वर सहायता नहीं करता ।

आत्मावलम्ब जिसको कुछ भी न प्यारा।
देता उसे न जगदीश्वर भी सहारा ॥

मानसिक पवित्रता से सौन्दर्य वृद्धि ।

(चौधरी सौभाग्यमल जैन, बड़नगर)

सुन्दर निर्मल भावना. एवम् मानसिक शक्ति ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सुन्दरता प्राप्त की जा सकती है। एक विद्वान डाक्टर कहते हैं, कि सौन्दर्य का आदर्श सदा ध्यान में रखने से सुन्दरता प्राप्त हो सकती है। सुन्दरता को ध्यान-भावना में रखना और सुन्दर बनना एक ही बात है क्यों कि मन जब किसी सुन्दर वस्तु पर लगाया जाता है तो वह सुन्दरता उस समय के लिए ध्यान करने वाले का अङ्ग बन जाती है। और भी अनेक बातें हैं जिनसे सौन्दर्य वृद्धि होती है जैसे नम्र स्वभाव, प्रेमदृष्टि, पवित्र विचार तथा अहिंसात्मक भाव सुन्दरता को और भी विशेष चमका देते हैं, इनका प्रभाव और प्रतिबिम्ब चहेरा एवम् आकृति पर पड़े बिना रह नहीं सकता।

वास्तव में बाहरी सूरत-शकल आन्तरिक विचारों से बनती है। एतदर्थ प्रत्येक व्यक्ति को वही बातें विचारनी, बोलनी-चाहिए और आचरण में लानी चाहिये जिनका प्रभाव हम हमारे रक्त और मांस पर देखना चाहते हैं। समझदार माता आरम्भ ही से पवित्र विचारों का प्रभाव अपने बालकों पर छोड़ती रहती है क्यों कि सुन्दरता अन्दर ही से उत्पन्न होती है और सत्य तथा पवित्र विचारों से स्थिर हो जाती है। पूर्ण सौन्दर्य, पूर्ण मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य का प्रमाण है। सौंदर्य विकास के लिये अच्छे से अच्छे और बढ़िया से बढ़िया पवित्र विचार प्रत्येक अवयव के भीतर से गुजरते रहना चाहिये, जिससे शरीर के प्रत्येक भाग में बल एवम् सौंदर्य का संचार हो। मन का प्रभाव शरीर पर बड़ा गहरा पड़ता है। मन दर्द उत्पन्न कर सक्ता है और उसे दूर भी कर देता है, यदि मन शोकतुर अथवा पीड़ित हो तो प्राकृतिक सौन्दय एवम् स्वास्थ्य चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकता। हृदयान्तरगत विचारों का प्रतिबिम्ब ही हमारे चहरे को बनाता और बिगाड़ता रहता है।

सुन्दर आकृति और हंसमुख चेहरा मुस्कराहट, प्रसन्नता, मानसिक हर्ष और सन्तोष से बन सकता है। चेहरे का प्रत्येक चढ़ाव उतार कोई न कोई चिन्ह अवश्य छोड़ता जाता है जो यद्यपि हमें तत्काल नहीं देख पड़ता तथापि लगातार ऐसा होने से वह साधारण आकृति में परिणित हो जाता है जिससे मनुष्य सुन्दर या कुरूप बनता जाता है। एक अनुभवी विद्वान का कथन है कि जिस आकृति में दुष्ट स्वभाव छिपा हुआ है वह आकृति कदापि सुन्दर नहीं बन सक्ती, किन्तु जिसका स्वभाव अच्छा सत्य शिव सुन्दर विचारों से ओतप्रोत है उसकी कान्ति कभी भी भद्दी नहीं हो सकती चाहे उसकी वाह्य आकृति भले ही मनोरम न हो। यही कारण है कि पवित्रात्मा-महात्माओं के दर्शन से एक विशेष प्रकार का सुख प्राप्त होता है। बहुधा वे व्यक्ति जो दरिद्रावस्था में कुरुप दिखाई पड़ते हैं, धनैश्वर्यशाली होजाने पर निश्चिन्तता मानसिक विचारों में आते ही कुछ और ही दिखाई देने लगते हैं। उनके मुंह पर एक विचित्र क्रान्ति आ जाती है, वास्तव में आकृति-मनका सच्चा दर्पण और स्वभाव का फोटो है।

सौन्दर्य-बहुत कुछ प्राकृतिक होता है सही, किन्तु फिर भी इसे चिरकाल तक टिकाये रखना या न रखना हमारे ही अधिकार में है। इसमें बहुत कुछ घटाव बढ़ाव किया जा सकता है, हम जो कुछ अपनी आकृति को बना चुके हैं उसे प्रयास करने पर बदल भी सकते हैं, यह निर्विवाद सत्य है।

ऐसा अनुभव में आता है कि अनेक स्त्री पुरुषों की आकृति से सदा उदासी टपका करती है, पर इस अवस्था में पहले यह पता लगाना चाहिये कि

कन २ कारणों से उदासी, अप्रसन्नता एवम् दुख उत्पन्न हुआ है, यह वास्तव में दुखी हृदय का ही विकार होता है। और ऐसे मनुष्य संसार की प्रत्येक वस्तु को निराशा की दृष्टि से देखा करते हैं। इस स्वभाव को छोड़ने के लिये हमें उच्च कोटि के मनोबल एवम् इच्छाशक्ति से काम लेना चाहिये, जब पूर्ण प्रसन्नता प्राप्त कर मनुष्य आशावादी बन जावेगा तो आशाजनित आभा का आविर्भाव होगा और अवश्यमेव आकृति की काया पलट जायगी। अतएव इष्ट प्राप्ति में असफल होने वाले व्यक्तिओं को पूर्व असफलता का अनिष्ट प्रभाव वर्तमान प्रयत्नों द्वारा मिटाना चाहिये, लोभी आत्माओं को जो सदा किसी न किसी अप्राप्त वस्तु के लिये आहें भरा करती हैं, उन्हें चाहिये कि वर्तमान स्थिति पर सन्तुष्ट रहना सीखें-इससे उनका परमहित होगा। बहुत से चहरों से सदा दुःख, उदासी, चिड़चिड़ापन, क्रोध, संकीर्ण हृदयता, लोभ, कपट, दम्भ और शत्रुता टपका करती है, ऐसी आकृतियों में वास्तविक सुन्दरता कदापि स्थिर नहीं रह सक्ती। चहरे की आकृति बदलने के लिये मन की गति बदलने की खास आवश्यकता है। दुःख और उदासी के स्थान पर प्रसन्न चित्त और हर्ष, चिड़-चिड़ापन और क्रोध के स्थान पर सर्व प्रियता और मनोरंजन, संकीर्ण हृदयता के स्थान पर उदारता एवम् संतोष उत्पन्न करना चाहिये।

बीमारी का ध्यान और शंका करने से भी बीमारी पैदा होती है,कठिन से कठिन रोग का विचार हृदय से बाहर निकाल फेंको, तुम अवश्य निरोग हो जाओगे, सुन्दर बनने का रहस्य स्वयं अपने आपको सुन्दर समझना है। सुन्दरता विनाशक विचारों को हृदय से निकाल दो तो आपको प्रत्येक समय खुद में सौन्दर्य्य की एक आशा दीख पड़ेगी, किसी रूपके अनुसार अपने रूप को बनते हुए ध्यान करो,कुवासनाओं को मिटाकर उत्तम पवित्र विचार चित्त में आने दो, शोक और दुख का ध्यान छोड़ ईश्वर पर विश्वास रख अपनी वर्तमान स्थिति पर सन्तोष रक्खो। मनको सदा प्रसन्न रक्खो और फिर देखो कि आकृति पर सौन्दर्य का प्रकाश अपना रङ्ग लाता है कि नहीं। सौन्दर्य के साथ उत्तम प्रकृति सोने में सुगंध का काम करती है।

कुवासनाओं एवम् व्यभिचार की भावना मात्र से आकृति फीकी, निस्तेज और मलिन हो जाती है। भले आदमी और भली स्त्रियों के जितना निकट जाओ उतनी ही आकृति भली मालूम होगी। इसके प्रतिकूल बुरे आदमी और बुरी स्त्रियों के जितना निकट जाओ उनकी आकृति उतनी ही बुरी मालूम होने लगेगी। सत्य प्रियता, न्याय, पवित्रता, मिष्ट-भाषण, दया, लज्जा, आत्मीयता, धैर्य्य, उत्साह, वीरता, परोपकार आदि सौंदर्य प्राप्ति के मुख्य साधन हैं।

प्रेम भी सुन्दरता का सच्चा सहायक है। माता पिता का पारस्परिक प्रेम-उत्तम सन्तान उत्पन्न करता है, पति पत्नि का प्रगाढ़ प्रेम उनके हृदय सरोवरों में सदा प्रसन्नता की लहरें उठाया करता है। माता पिता और सन्तान में पारस्परिक प्रेम से सन्तान इसीलिये सुन्दर होजाती है और हमेशा सुन्दर रहती है।

बुद्धि,आत्मिक उन्नति और शिक्षा भी सौन्दर्यता को बहुत कुछ बढ़ाती है। एक घर में दो बहनें हों, उसमें एक सभ्य और दुसरी अशिक्षित और असभ्य हो तो आप देखेंगे कि पहिली अधिक रूपवती होगी। शिक्षा से भी एक चहरे पर प्रतिभा आजाती है। हमारे देश की महिलाओं में शिक्षा की खास कमी है। सफाई के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं। इन बातों पर ध्यान देना खास जरूरी है।

संसार में और कोई ऐसी वस्तु नहीं जितनी सुशील पुण्यात्मा और सुन्दर स्त्री।

× × ×

शक्ति का सदुपयोग करो

(श्री० सत्यनारायण जी मूधड़ा, हैदराबाद)

परमात्मा ने धन, ऐश्वर्य, पद, बुद्धि आदि सम्पदाऐं मनुष्य को इसलिए नहीं दी हैं कि उनके द्वारा वह अकेला ऐश आराम उड़ावे और मस्त रहे, वरन् इसलिए दी हैं कि अपने से कमजोर और दुर्बल व्यक्तियों को ऊँचा उठाने में आगे बढ़ाने में इन शक्तियों के द्वारा सहायता करे। बेशक, अपनी शारीरिक मानसिक और सामाजिक उन्नति के लिए भी शक्तियों को खर्च करना चाहिए जिससे बल का भण्डार, शक्ति का श्रोत घटने न पावे परन्तु स्मरण रखना चाहिए इसका अन्तिम लक्ष दूसरों की सेवा, नर नारायण की पूजा करना ही है।

जिसकी भीतरी और बाहरी सम्पदाऐं परमार्थ साधने में लगती हैं वही धन्य है, उसी का जीवन सफल है। पेट तो कुत्ता भी भरता है, जमा करना तो चींटियां भी जानती हैं, इन्द्रिय वासना तो कीट पतंग भी तृप्त करते हैं, यदि इतना ही काम मनुष्य भी कर पावे तो उसका जीना वृथा है। वह अमीर किस काम का, जिसकी सम्पत्ति से दुनियां का कुछ उपकार न हुआ, वह विद्वान किस काम का, जिस की विद्या से भूले भटकों का पथ प्रदर्शन न हुआ। वह बलवान किस काम का, जिसके बल से कमजोरों को ऊपर उठने का सहारा न मिला।

सच्चा मनुष्य, महापुरुष, नर नारायण वह है जो अपनी शक्तियों को बढ़ाता है और उन्हें संसार की भलाई में खर्च करता है। वह अपनी उन्नति करता है पर करता है परमार्थ करने, सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिए। जीवन की सफलता इस बात के ऊपर निर्भर है कि परमात्मा की दी हुई भीतरी और बाहरी सम्पदाओं का हम परमात्मा के चरणों पर समर्पित करें, लोक सेवा में लगावें। ईमानदार वह है जो कर्ज को वापिस लौटाता है, साधु वह है जो परमात्मा के वैभव को उसी की पूजा में—लोक सेवा में लगा देता है।

———

गद्य गीत—

प्रसून से

(राजकुमारी श्री रत्नेशकुमारी 'ललन' मैनपुरी स्टेट)

डालियों पर झूलते हुए—खिल २ हँसते हुए—तुम कितने प्यारे लगते हो—अरे ओ प्रसून? वायु तुम्हें झकझोर डालता है पर तुम वैसे ही प्रफुल्लित बने रहते हो।

सूर्य अपने प्रचण्ड ताप से तपाता हुआ भी तुम्हारी मुस्कानों को नहीं मिटा पाता प्रिय! तितलियां भ्रमर तुम्हारे मधुकोष को रिक्त करके भी तुम्हारा हास्य नहीं छीन पाते।

निष्ठुर माली जब लोनी लतिका की सुखद गोद से तुम्हें जबरदस्ती छीन लेता है तब भी तुम्हारी मधुर हँसी मलिन नहीं पड़ने पाती, अरे ओ एक रस तपस्वी कोमल कुसुम!

हृदय बिंधा कर किसी के हृदय-हार बन कर अथवा चरणों पर चढ़ कर भी तुम पूर्ववत् ही खिलखिला रहे हो। काश! मैं भी तुम्हारी भांति बन पाती! अरे ओ बड़भागी सुमन!

सौभाग्य के शिखर पर आसीन होकर भी तुम इतराते नहीं और दुःख की गति में गिर कर भी तुम श्रीहीन होकर भी-जीवन के अन्तिम क्षणों तक भी—सुगन्धि हीन नहीं बनते। जब तक तुम्हारी जीवनी शक्ति शेष रहती है तब तक तुम्हारा सुन्दर मुख खिला ही रहता है। सारे संसार का तिरिस्कार लाञ्छना सहकर भी तुम अम्लान ही रहते हो ओ निष्कामी पुष्प!

प्रिय! किसी जीवन में भी क्या मैं तुम्हारी इस आदर्श स्थिर प्रज्ञता को अपना सकूँगी? धूल में पड़े हुए विश्व से तिरिस्कृत चिर पवित्र फूल! मेरी यह हार्दिक श्रद्धाञ्जलि ग्रहण करो। आजीवन मैं तुमको जीवन पथ का एक आदर्श प्रदर्शक समझकर स्मरण रक्खूँगी।

———

रमणी या जीवन संगिनी।

(श्री० मोहनलाल जी अहलमद, बीकानेर)

किसी नगर में एक ब्राह्मण ब्राह्मणी रहते थे। उनके एक लड़का था। जब लड़का ५ वर्ष का हुआ तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी सुरपुर सिधार गये। बालक को अनाथ देखकर एक महात्मा जी को दया आई और वे उसे पालने के लिए अपने साथ लेगये। बालक का पालन पोषण होता रहा और वह २५ वर्ष का हो गया।

एक दिन इस तरुण ब्राह्मण युवक के मनमें आया कि तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। इसके लिए उसने महात्मा जी से आज्ञा माँगी। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक दे दी। युवक चल पड़ा।

रास्ते में उसने देखा कि उसके समान ही एक युवक खूब सजा हुआ पालकी में बैठा जारहा है और बहुत से आदमी तरह तरह की सवारियों में बैठे हुए गाजे बाजे के सहित उसके साथ जारहे हैं। ब्राह्मण ने उन लोगों के पास जाकर पूछा— यह सब क्या है? उन्होंने बताया कि यह बरात जारही है, सजा हुआ युवक दूल्हा है। इसकी एक सुन्दरी के साथ शादी होगी। फिर यह दूल्हा अपनी बधू के साथ सुख पूर्वक सोया करेगा।

इन सब बातों को सुनकर ब्राह्मण युवक का मन भी सुन्दरी प्राप्त करने के लिए ललचाने लगा। उसके चित्त में नाना प्रकार के विषय विकार उठने लगे। सुन्दरी की बातें सोचने में ही उसका सारा ध्यान लग गया। रात हुई, ब्राह्मण एक कुए के पास लेट गया, नींद आई। स्वप्न में उसने देखा कि उसकी शादी होगई और सुन्दरी उसके पास आकर लेट गई है। ब्राह्मण उस युवती के अपने अङ्क में लेने के लिए उसकी तरफ सरकने लगा। सरकते सरकते वह कुए में ही गिर पड़ा।

किसी के कुए में गिरने की आवाज सुनकर आस पास के लोग दौड़े। रस्सी फाँस र कुए में घुसे और उस ब्राह्मण को निकाला। वह बहुत घायल होगया था। पूछने पर उसने अपना पता ठिकाना बताया और कहा मुझे अमुक स्थान पर मेरे गुरु महात्मा जी के पास पहुँचा दो। दयालु लोगों ने उस घायल ब्राह्मण को बैलगाड़ी में रख कर उन महात्मा के पास पहुँचा दिया।

अपने शिष्य की यह दुर्दशा देखकर महात्माजी बड़े दुखी हुए। उनने कुए में गिरने का कारण पूछा। शिष्य ने वह सब बात कह सुनाई कि बरात देख कर उसके मान में शादी की इच्छा हुई, स्वप्न में उसे सुंदरी मिली और उससे लिपट ने का प्रयत्न करते हुए वह कुए में गिर पड़ा। महात्माजी ने कहा बेटा! जिस वस्तु की कल्पना मात्र ने तेरा यह दुर्दशा कर दी यदि वह साक्षात् रूप से तुझे मिल जाय तो अनुमान लगाले कि फिर तेरी कितनी बड़ी दुर्दशा होगी।

स्त्री को जो लोग कामिनी, रमणी विलास यंत्र समझ कर प्राप्त करने की इच्छा करते हैं उनके मन में विषय विकारों की दुर्बुद्धि का भयानक धुँआ घुमड़ जाता है जिससे उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। स्त्री-जीवन सहचरी, अर्धाङ्गिनी, आत्म-विस्तार में सहायता करने वाली दिव्य शक्ति है। जो उसका वास्तविक रूप समझ कर तदनुसार ही व्यवहार करते हैं उनका जीवन सुखी रहता है। स्त्री को काम विकारों का पुतला मात्र समझ कर इसी इच्छा से जो उसका सम्पर्क करते हैं निस्संदेह उनकी अत्यन्त दुर्दशा होती है। उनके ऐसे घाव लगते हैं जिनकी चोट से उन्हें सदैव कराहते रहना पड़ता है।

मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली भांति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिये।

× × ×

लक्ष्मी जी कहाँ रहती हैं ?

दिवाली समीप है। लोग लक्ष्मी जी की पूजा बड़े उत्साह से करेंगे और चाहेंगे कि लक्ष्मी जी प्रसन्न होकर हमारे यहां निवास करें। ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि केवल पूजा से ही लक्ष्मी जी प्रसन्न नहीं होतीं। वे अपनी रुचि के विपरीत स्थानों से चली जाती हैं और वहां ठहरती हैं जा उनकी प्रिय जगह है। नीचे महाभारत की एक कथा दी जाती है जिससे पाठक समझ सकेंगे कि लक्ष्मी जी कहां रहती हैं। जिन्हें लक्ष्मी जी को बुलाने की इच्छा हो वे अपने यहां ऐसा ही वातावरण तैयार करें। अनुकूल जगह में बिना बुलाये लक्ष्मी जी पहुँचती हैं। कथा—

एक दिन लक्ष्मी जी इन्द्र के दरवाजे पर पहुँची और बोलीं कि हे इन्द्र में तेरे यहाँ निवास करना चाहती हूं।

इन्द्र ने आश्चर्य के साथ कहा—हे कमले! आप तो असुरों के यहाँ बड़े आनन्द पूर्वक रहती थीं, वहां आपको कुछ कष्ट भी न था। मैंने कितनी ही वार आपको अपने यहां बुलाने का घोर प्रयत्न किया, परन्तु तब न आईं और आज आप बिना बुलाये ही मेरे द्वार पर पधारी हैं सो हे देवि! इसका कारण मुझे समझा कर कहिए।

लक्ष्मी ने कहा—हे इन्द्र! कुछ समय पूर्व असुर बड़े धर्मात्मा थे, कर्तव्य में परायण रहते थे। सब काम नियमित रूप से करते थे, परन्तु उनके यह गुण धीरे धीरे नष्ट होने लगे प्रेम के स्थान पर ईर्षा द्वेष और क्रोध कलह का उनके घर में निवास रहने लगा। अधर्म दुर्गुण और व्यसनों की वृद्धि होने लगी तब मैंने सोचा कि अब मेरा निर्वाह इन लोगों के बीच में नहीं हो सकता। इसलिए मैं तेरे यहां चली आई हूं।

इन्द्र ने पूछा—हे भगवती! वे कौन कौन से दोष हैं जिनके कारण आपने असुरों को छोड़ा है। उन दोषों को विस्तार पूर्वक मुझसे कहने की कृपा कीजिए, जिससे मैं भी सावधान रहूं।

लक्ष्मी ने उत्तर दिया—हे इन्द्र! जब कोई वयोवृद्ध सत्पुरुष ज्ञान विवेक का उपदेश करते थे तो असुर लोग उनके उपहास करते या उपेक्षा से निद्रा लेने लगते। वृद्ध और गुरुजनों के सम्मान का विचार न करके उनको बराबरी के आसन पर बैठते। सत्कार, शिष्टाचार और अभिवादन को बात वे लोग भूल गये। लड़के माता पिता से मुँह जोरी करने लगे। बहुत रात्रि गये तक चिल्लाते रहते न स्वयं सोते न दूसरों को सोने देते। अकारण बैर और विवाद मोल लेते। स्त्री ने पति की आज्ञा मानना छोड़ दिया, पुत्र को पिता की परवाह न रही। शिष्य आचार्यों की तरफ मुँह मटकाने लगे। समस्त मान मर्यादाऐं जाती रहीं। भिक्षा और दान देना बन्द करके अपने ही ऐश आराम में धन खर्च करने लगे। घर के बच्चों की परवाह न करके बूढ़े बूढ़े पुरुष चुपचाप मधुर मिष्ठान अकेले ही खाते। जहां ऐसे निर्लज्ज आचरण होते हैं, उनके यहां हे इन्द्र! भला मैं किस प्रकार रह सकती हूँ?

वह असुर लोग फलदार और छायादार हरे भरे वृक्षों को काटने लगे। दिन चढ़े तक वे लोग सोते, प्रहर रात्रि गये तक खाते, भक्ष और अभक्ष अन्न का विचार न करते। सत्कर्म करना तो दूर, दूसरों को करते देखते तो उसमें भी विघ्न उपस्थित करते। स्त्रियां फैसन, आलस्य और व्यसनों में व्यस्त रहने लगीं, घर में अनाज बिखरा पड़ा रहता जिसे चूहे खा खाकर उपद्रव करते। खाद्य पदार्थ खुले पड़े रहते जिन्हें कुत्ते बिल्ली चाटते। गम्य अगम्य का विचार छूट गया, घर में ही व्यभिचार होने लगा, मादक द्रव्यों में, जुए में, नाच तमाशों में रुचि बढ़ने लगी, लापरवाही का हर ओर साम्राज्य था। ऐसी दशा में नौकरों की खूब बनपड़ी वे चुरा चुरा कर अपना घर भरने लगे। उनके

ऐसे आचरण देख कर मेरा जी जलने लगा एक दिन मैं चुपचाप उनके घर से चली आई। अब वहां दरिद्रता का निवास होगा।

हे इन्द्र! तू ध्यान पूर्वक सुन, मैं परिश्रमी, कर्तव्य परायण. विचारवान, सदाचारी जागरूक, और नियमित रहने वाले धर्मवान् लोगों के यहां ही रहती हूँ। जब तक तेरा आचरण ऐसा रहेगा तभी तक मैं तेरे यहाँ रहूंगी।

लक्ष्मी के इन बचनों को सुनकर इन्द्र ने उन्हें अभिवादन किया और कहा हे कमले! आप मेरे यहां सुख पूर्वक रहिए। मैं ऐसा कोई अधर्म मय आचरण न करूंगा जिससे रुष्ट होकर आपको मेरे यहां से जाना पड़े।

अखंडज्योति का विशेषांक।

१ जनवरी सन्४५ को अखण्डज्योति का 'सिद्धि अंक" निकलेगा। आत्मिक साधनाओं द्वारा अद्भुत, आश्चर्य जनक एवं महत्व पूर्ण सिद्धियों का प्राप्त होना प्रत्यक्ष है। इस अंक में ऐसे साधन बताये जायँगे जिनके आधार पर मामूली आदमी मामूली अभ्यासों द्वारा बहुत २ अद्भुत शक्तियां प्राप्त कर सकता है और उन चमत्कारों सिद्धियों द्वारा स्वयं अपने तथा दूसरों के दुखों को मिलकर स्वर्गिय आनन्द का अनुभव कर सकता है।

यह विशेषाङ्क अपने ढंग का अनूठा होगा। ऐसे सरल, सुवोध, विज्ञान सम्मत, सच्चे और अनुभव पूर्ण साधन जिनके द्वारा तुरन्त प्रत्यक्ष फल प्राप्त होता है अन्यत्र कहीं भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। इस विशेषाङ्क में सिर्फ ऐसे ही साधन बताये जायेंगे जो अनेकों बार परीक्षा किये जाचुके हैं। जिनके द्वारा जादू भरे चमत्कार प्रत्यक्ष देख लिये गये हैं विशेष जानकारी एवं साधना कराने के लिए अखंडज्योति कार्यालय तैयार रहेगा।

—मैनेजर-'अखंडज्योति'कार्यालय,मथुरा।

सद् इच्छाओं की हत्या मत करो

(श्री. रमेश वर्मा, खागा)

मनुष्य के गहरे अन्तस्तल में से जो दिव्य सात्विक अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें आत्मा की वाणी, परमात्मा का आज्ञा ही समझना चाहिए। सदभावना और उच्च आदर्शों का लेकर जो सद्इच्छाऐं उठती हैं वे सर्वथा आदरणीय और अनुकरणीय हैं।

यदि सद् इच्छाओं को पूरा करने के मार्ग में कोई आसुरी विघ्न बाधा उपस्थित होती हो तो उसके सामने हमें झुकना नहीं चाहिए, आत्म समर्पण नहीं करना चाहिए। मनुष्य ईश्वर का अविनाशी राजकुमार है यह उसके गौरव के प्रतिकूल होगा कि वह तुच्छ से स्वार्थ, विघ्न और प्रलोभनों के सामने अपनी गरदन झुकावे-आत्म समर्पण करे।

संसार में हर एक प्राणी सुख की इच्छा से काम कर रहा है। वर्तमान युग की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति के मूल में यही सुखेच्छा काम कर रही है। यह प्रवृत्त अस्वाभाविक नहीं है। भगवान की इच्छा है कि मनुष्य सुख पूर्वक रहे और आनन्द मय सरस जीवन व्यतीत करे। यह सरसता और आनन्द मयी स्थिति केवल मात्र भौतिक सपदाओं से प्राप्त नहीं होसकती। वह तब प्राप्त होती है जब हम अपनी सात्विक शुभेच्छाओं को-अन्तःकरण की प्रेरणाओं को-सुनते हैं और उनको पूरा करने के लिए प्रयत्न करते हैं। अपनी सात्विक इच्छाओं का-सत्कर्म करने की प्रेरणाओं का-भय या लोभ के कारण यदि हनन किया गया तो भीतर ही भीतर एक ऐसी जलन उठने लगेगी जिसे संसार की किसी भी भौतिक संपदा से शान्त नहीं किया जा सकता। सच्चे सुख को प्राप्त करने के इच्छुकों को यह जान लेना चाहिए कि सद्इच्छाओं को पूर्ण करने के प्रयत्न में ही सुख का स्रोत छिपा हुआ है।

गायत्री अनुष्ठान की सिद्धि

(श्री० मन्त्र योगी)

पिछले अङ्क में 'गायत्री मंत्र की दैनिक साधना' लेख में यह बताया गया था कि प्रतिदिन गायत्री मत्र का जप किस प्रकार करना चाहिए। उस विधि के अनुसार यथा शक्ति संख्या में नित्य जप करने से शरीर का स्वास्थ्य, चेहरे का तेज और वाणी का ओज बढ़ता जाता है। बुद्धि में तीक्ष्णता और सूक्ष्म-दर्शिता की मात्रा में वृद्धि होती है एवं अनेक मानसिक सद्गुणों का विकास होता है, यह लाभ ऐसे हैं जिनके द्वारा जीवन यापन में सहायता मिलती है।

विशेष अनुष्ठान पूर्वक गायत्री मंत्र को सिद्ध करने से उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त कुछ अन्य विशिष्ठ लाभ भी प्राप्त होते हैं जिनको चमत्कार या सिद्धि भी कहा जा सकता है। गायत्री अनुष्ठान की अनेक विधियाँ हैं, विभिन्न ग्रन्थों और विभिन्न आचार्यों द्वारा पृथक रीति से विधान बताये गये हैं। इनमें से कुछ विधान ऐसी तान्त्रिक प्रक्रियाओं से परिपूर्ण हैं कि उनका तिल तिल विधान यथा नियम पूरा किया जाना चाहिए, यदि उसमें जरा भी गड़बड़ हो तो लाभ के स्थान पर हानि होने की आशङ्का अधिक रहती है। ऐसे अनुष्ठान गुरु की आज्ञा से उनकी उपस्थिति में करने चाहिए तभी उनके द्वारा समुचित लाभ प्राप्त होता है।

किन्तु कुछ ऐसे भी राजमार्गी साधन हैं जिनमें हानि की कोई आशङ्का नहीं जितना है लाभ ही है। जैसे राम नाम अविधि पूर्वक जपा जाय तो भी कुछ हानि नहीं हर हालत में कुछ न कुछ लाभ ही है। इसी प्रकार राजमार्ग के अनुष्ठान ऐसे होते हैं जिनमें हानि की किसी दशा में कुछ सम्भावना है। हां लाभ के सम्बन्ध में यह बात अवश्य है कि जितनी श्रद्धा, निष्ठा और तत्परता से साधन किया जायगा उतना ही लाभ होगा। आगे हम ऐसे ही विधि अनुष्ठान का वर्णन करते हैं यह गायत्री की सिद्धि का अनुष्ठान हमारा अनुभूत है। और भी कितने ही हमारे अनुयायियों ने इसकी साधना को सिद्ध करके आशातीत लाभ उठाया है।

देवशयनी एकादशी [आषाढ़ सुदी ११] से लेकर देव उठनी एकादशी [कार्तिक सुदी ११] के चार महीनों को छोड़ कर अन्य आठ महीनों में गायत्री की सवालक्ष सिद्धि का अनुष्ठान करना चाहिए। शुक्ल पक्ष की दौज इसके लिए शुभ मुहूर्त है। जब चित्त स्थिर और शरीर स्वस्थ्य हो तभी अनुष्ठान करना चाहिए। डँवाडोल मन और बीमार शरीर से अनुष्ठान तो क्या कोई भी काम ठीक तरह नहीं हो सकता।

प्रातःकाल सूर्योदय से दो घन्टे पूर्व उठकर शौच स्नान से निवृत्त होना चाहिए। फिर किसी एकान्त स्वच्छ, हवादार कमरे में जपके लिए जाना चाहिये। भूमि को जल से छिड़क कर दाभ का आसन फिर उसके ऊपर कपड़ा बिछाना चाहिए। पास में घी का दीपक जलता रहे तथा जल से भरा हुआ एक पात्र हो। जप के लिए तुलसी या चन्दन की माला होनी चाहिए। गंगाजल और खड़िया मिट्टी मिलाकर मालाओं की संख्या के गिनने के लिए छोटी छोटी गोलियां बना लेनी चाहिएँ। यह सब वस्तुऐं पास में रख कर आसन पर पूर्व की ओर मुख करके जप करने के लिए बैठना चाहिए। शरीर पर धुली हुई धोती हो, और कन्धे से नीचे खद्दर का चादरा या ऊनी कम्बल ओढ़ लेना चाहिए। गरदन और सिर खुला रहे।

प्राणायाम—मेरु दंड सीधा रख कर बैठना चाहिए। आरम्भ में दोनों नथुनों से धीरे धीरे पूरी सांस खींचनी चाहिए। जब छाती और पेट में पूरी हवा भर जाय तो कुछ समय उसे रोकना चाहिए और फिर धीरे धीरे हवा को पूरी तरह बाहर निकाल देना चाहिए। "ॐ" मन्त्र का जप मन ही मन सांस खींचने रोकने और छोड़ने के समय करते

रहना चाहिए। इस प्रकार के कम से कम ५ प्राणायाम करने चाहिए। इससे चित्त स्थिर होता है, प्राण शक्ति सतेज होती है और कुवासनाऐं घटती हैं।

प्रतिष्ठा—प्राणायाम के बाद नेत्र बन्द कर के सूर्य के समान तेजवान अत्यन्त स्वरूपवती कमल पुष्प पर विराजमान गायत्री माता का ध्यान द्वारा आह्वान करना चाहिए। उनके लिये जगज्जननी; तेजपुंज, सर्वव्यापक, महाशक्ति की भावना धारण करनी चाहिए। मन ही मन उन्हें प्रणाम करना चाहिए और अपने हृदय कमल पर आसन देकर उन्हें प्रीति पूर्वक विराजमान करना चाहिए।

इसके बाद जप आरम्भ करना चाहिए। "ॐ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।" इस एक मन्त्र के साथ माला का एक मनका फेरना चाहिए। जब एक माला के १०८ दाने पूरे होजांय तो खड़िया को गङ्गा-जल मिश्रित जो गोलियां बना कर रखी हैं उनमें से एक उठा कर अलग रख देनी चाहिए। इस प्रकार हरएक माला समाप्त होने पर एक गोली रखते जाना चाहिए जिससे मालाओं की संख्या गिनने में भूल न पड़े।

जप के समय नेत्र अधखुले रहने चाहिए। मन्त्र इस तरह जपना चाहिए कि कण्ठ, जिह्वा, तालु, ओष्ठ आदि स्वर यन्त्र तो काम करते रहें पर शब्द का उच्चारण न हो। दूसरा कोई उन्हें सुन न सके। वेद मंत्र को जब उच्च स्वर से उच्चारण करना हो तो सस्वर ही उच्चारण करना चाहिए। सर्व साधारण पाठकों के लिए स्वर विधि के साथ गायत्री मंत्र का उच्चारण कर सकना कठिन है इसलिए उसे इस प्रकर जपना चाहिए कि स्वर यन्त्र तो काम करें पर आवाज़ ऐसी न निकले कि उसे कोई दूसरा आदमी सुन सके। जप से उठने के बाद जल पात्र को अर्घ रूप में सूर्य के सम्मुख चढ़ाना चाहिए। दीपक की अध जली बत्ती को हटा कर हर बार नई बत्ती डालनी चाहिए।

अनुष्ठान में सवा लक्ष मन्त्र का जप करना है। इसके लिए कम से कम सात दिन और अधिक से अधिक पन्द्रह दिन लगाने चाहिए। सात, नौ, ग्यारह या पन्द्रह दिनमें समाप्त करना ठीक है। साधारणतः एक घण्टे में १५ से लेकर २० माला तक जपी जा सकती हैं। कुल मिला कर ११५८ माला जपनी होती हैं। इसके लिए करीब ६० घण्टे चाहिए। जितने दिन में जप पूरा करना हो उतने ही दिन में मालाओं की संख्या बांट लेनी चाहिए। यदि एक सप्ताह में करना हो करीब ८-६ घण्टे प्रतिदिन पड़ेंगे इनमें से आधे से अधिक भाग प्रातःकाल और आधे से कम भाग तीसरे पहर पूरा करना चाहिए। जिन्हें १५ दिन में पूरा करना हो उन्हें करीब ४ घण्टे प्रतिदिन जप करना पड़ेगा जो कि प्रातःकाल ही आसानी से हो सकता है।

जप पूरा हो जाय तब दूसरे दिन एक हज़ार मन्त्रों के जप के साथ हवन करना चाहिए। गायत्री हवन में वैदिक कर्मकाण्ड की रीतियां न बरती जा सकें तो कोई हानि नहीं। स्वच्छ भूमि पर मृतिका की वेदी बनाकर, पीपल, गूलर या आम की समिधाएँ जलाकर शुद्ध हवन सामिग्री से हवन करना चाहिए। एक मन्त्र का जप पूरा हो जाय तब "स्वाहा" के साथ सामिग्री चढ़ानी चाहिए। एक दूसरा साथी हवन में और बिठाना चाहिए जो आहुति के साथ घी चढ़ाता जाय। जब दस मालाएं मन्त्र जप के साथ हवन समाप्त हो जाय तो अग्नि की चार प्रदक्षिणा करनी चाहिए। तत्पश्चात् भजन कीर्त्तन, प्रार्थना, स्तुति करके प्रसाद का मिष्टान्न बांटकर कार्य समाप्त करना चाहिए।

जिन्हें गायत्री मन्त्र ठीक रीति से याद न होसके वे "ॐ भूर्भुव स्वः" केवल इतना ही जाप करें। जिन दिनों अनुष्ठान चल रहा हो, उन दिनों एक समय ही सात्विक भोजन करना चाहिए, सन्ध्या को आवश्यकता पड़ने पर दूध या फल लिया जा सकता है। भूमि पर सोना चाहिए, हजामत नहीं बनवानी

चाहिए, ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। चित्त को चंचल लुब्ध या कुपित करने वाला कोई काम नहीं करना चाहिए। कम बोलना, शुद्ध वस्त्र पहिनना, भजन, सत्सङ्ग में रहना, स्वाध्याय करना, तथा प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। अनुष्ठान पूरा होने पर सत्पात्रों को अन्न धन का दान देना चाहिए।

इस प्रकार सवा लक्ष जप द्वारा गायत्री मन्त्र सिद्ध कर लेने पर वह चमत्कार पूर्ण लाभ करने वाला हो जाता है। बीमारी, शत्रु का आक्रमण, राज दरबार का कोप, मानसिक भ्रांति, बुद्धि या स्मरण शक्ति की कमी, ग्रह जन्य अनिष्ट, भूत बाधा, सन्तान सम्बन्धी चिन्ता, धन हानि, व्यापारिक विघ्न; बेरोज़गारी, चित्त की अस्थिरता, वियोग, द्वेष, भाव, असफलता आदि अनेक प्रकार की आपत्तियां और विघ्न बाधाएं दूर होती हैं। यह सिद्धि करने वाला अपनी और दूसरों की विपत्ति टालने में बहुत हद तक दूर करने में किस प्रकार समर्थ होता है। इसका वर्णन अगले अङ्क में करेंगे।

बुरे कर्म का फल अच्छा हो ही नहीं सकता, बुरा कर्म करते हुए जो किसी को फलता फूलता देखा जाता है वह उसके उस बुरे कर्म का फल नहीं है, वह तो पूर्व के किसी शुभ कर्म का फल है जो अभी प्रकट हुआ है। अभी जो वह बुरा कर्म कर रहा है उसका फल तो आगे चल कर मिलेगा।

× × ×

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताएं प्राप्त हुई। अखंड ज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

१५) राजकुमारी ललन, मैनपुरी स्टेट।

४) श्री. गंगाचरण जी ब्रह्मचारी, उमरो, गोंडा।

२) श्री. एम. सी. गट्टानी शोभापुर।

१) श्री. राधाकृष्णजी, खेरी।

१) श्री. विश्वेश्वरदयाल शर्मा, भरथना।

'जहि शत्रुं महाबाहो!....'

(श्री रामकरण सिंह जी वैद्य, जफरापुर)

'परमात्मा की इच्छा से ही सब कुछ होता है।' इस महामन्त्र की गलत व्याख्या करने वाले कुछ लोग ऐसा कहा करते हैं कि पाप भी परमात्मा का इच्छा से होता है। दुष्टात्मा और बदमाश आदमी अपने दोष को परमात्मा पर मढ़ देने की इस सुगम युक्ति से लाभ उठाने में बड़ी चतुरता दिखाते हैं। वे अक्सर ऐसा कहते सुने जाते हैं कि—"क्या करें, परमात्मा की मर्ज़ी, उसे जैसा करना था वही होगया, भगवान की मर्ज़ी के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता, फिर हम इतना बड़ा दुष्कर्म कैसे कर सकते थे?"

यह युक्तिवाद बड़ा ही ग़लत, झूठा, भ्रमपूर्ण और धूर्तता से भरा हुआ है। परमात्मा की एक मात्र आज्ञा यह है कि मनुष्य शुभ कर्म करे- श्रेष्ठ मार्ग पर चले। यदि ध्यान पूर्वक कोई सुने तो हरएक मनुष्य के अन्तराल में से ऐसी आवाज़ हर समय उठती हुई सुनाई देगी जो सत्कर्म करने की ओर प्रोत्साहन देती है और दुष्कर्म करने से रोकती है। किसी दीन दुखी की सेवा सहायता करते समय मन में एक दिव्य संतोष का अनुभव होता है और चोरी, हत्या आदि दुष्कर्म करते समय पैर कांपने लगते हैं, दिल धड़कने लगता है और चित्त घबराने लगता है। परमात्माकी इच्छा और आज्ञाका यह प्रत्यक्ष लक्षणहै।

मनुष्य का दुष्ट चित्त, स्वार्थ और विषय विकार शरीर और बुद्धि को कुमार्ग की ओर ललचा कर ले जाता है। यह असुर का—शैतान का—प्रयत्न है। इसे परमात्मा की आज्ञा या इच्छा समझना एक बड़ी घातक भूल है, ऐसी भूल है जो अनीति के मार्ग पर सरपट दौड़ने के लिए रास्ता साफ कर देती है। चित्त को दुष्टता और दुष्कामना से तो हमें निरंतर लड़ना और उस पर विजय प्राप्त करना चाहिए। भगबान ने गीता में ऐसा ही उपदेश किया है "जहि शत्रुं महा बाहो, काम रूपं दुराशनन्।"

संगीत विश्व का प्राण है।

(गताङ्क से आगे)

मनुष्य रस प्रिय है। रस की उसे सादा प्यास रहती है, क्यों कि रस पीकर ही जीवन बनता और विकसित होता है। इन रसों में सङ्गीत सबसे प्रधान है। एक ऐसी क्रम बद्ध स्वर लहरीको सङ्गीत कहते हैं जो शरीर के परमाणुओं में मुग्धता और मादकता पूर्ण तरङ्गों का संचार करें। यह गायन और वाद्य दोनों प्रकार से होता है। जैसी ध्वनि जन्य मादकता अमुक बाजों को बजाने से उत्पन्न होती है वैसे ही गायन कला के साथ गाये हुए गीतों से भी होती है। कंठ में भी वाद्य यन्त्र है। जैसे स, रे, ग, म, प, ध, नि, स्वर बाजे में होते हैं वैसे ही कंठ में भी है। बाजे की सहायता से और बिना बाजे के केवल कंठ स्वर से,या दोनों प्रकार से सङ्गीत का रस उत्पन्न होता है। इस रस को कवि, नर्तक, गायक, वादक, विभिन्न रीतियों से उत्पन्न करते और मानव प्राणी की एक शाश्वत पिपासा को शान्त करते हैं।

जंगली और असभ्य मनुष्यों से लेकर सभ्यता की चोटी पर पहुँचे हुए लोगों तक सङ्गीत को एक समान प्रिय समझा जाता है। जिन सघनबनों की पिछड़ी हुई जातियों में इस बीसवीं सदी तक शिक्षा, विज्ञान आदि का प्रकाश नहीं पहुंच पाया है वहां भी संगीत मौजूद है और आज से नहीं अतीत काल से मौजूद है। तथ्य यह है कि सङ्गीत अन्तःकरण की एक स्फुरणा है जो स्वयमेव उत्पन्न होती है, उसे बहुत हद तक अपने आप सीख लिया जाता है। प्रकृति ने बहुत समझ सोच कर सङ्गीत उत्पन्न करने और उसमें रस लेने की क्षमता मनुष्य को प्रदान की है। इस क्षमता के द्वारा प्राणी की शारीरिक और मानसिक विकृतियां दूर होती हैं और उसकी वाह्य एवं आभ्यन्तरिक उन्नति का मार्ग प्राप्त होता है।

वैज्ञानिक शोधों ने यह सिद्ध किया है कि सङ्गीत एक ऐसा अदृश्य भोजन है जो अपने आश्चर्य जनक तत्वों से सुनने वालों की शारीरिक और मानसिक चेतना से भर देता है। यह तत्व और इनके लाभ ऐसे अद्भुत हैं जिनके चमत्कार देखकर आश्चर्य से दङ्ग रह जाना पड़ता है। हालैण्ड में सङ्गीत सुना कर गायों से अधिक दूध निकालने की एक नई प्रणाली निकली है। गायें दुहने के समय पर बहुत ही मधुर बाजे सरकार द्वारा ब्राडकास्ट किये जाते हैं ग्वाले लोग अपने रेडियो सैट दुहने के स्थान पर रख देते हैं। सङ्गीत को गायें बड़ी मुग्ध होकर सुनती हैं इससे उनके स्नायु संस्थान पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जिससे पन्द्रह प्रतिशत से लेकर बीस प्रतिशत तक दूध अधिक देती हैं। अन्य अनेक पशु पक्षियों से अधिक काम लेने और उनकी शक्तियां बढ़ाने के लिए नाना प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग होरहे हैं उनके आश्चर्य जनक परिणामों को देख देखकर विचारक लोग यह सोच रहे हैं कि इस अद्भुत शक्ति को मनुष्य की: विभिन्न प्रकार की उन्नतियों के लिए किस किस प्रकार प्रयोग किया जाय। आश्चर्य नहीं कि कुछ ही समय में यह महा शक्ति संसार में बिजली की भांति महत्व पूर्ण स्थान ग्रहण करले। आरम्भ में जब बिजली का आविष्कार हुआ था तो उसकी पकड़ लेने और झटका देकर फेंक देने की दो ही प्रक्रियां मालूम हुई थी। पर अब तो उस बिजली के द्वारा नाना प्रकार के अद्भुत कार्य होने लगे हैं। संभव है भविष्य में सङ्गीत भी दुनियाँ की ऐसी ही शक्ति सावित हो जैसी–बिजली।

सेनाएं जब किसी लोहे के पुल को पार करती हैं तो उन्हें आज्ञा दीजाती है कि लैफ्ट, राइट क्रम के अनुसार कदम मिलाकर न चलें, वरन तड़ बड़–पड़ पड़ की बिखरी हुई ध्वनि करते हुए चलें, क्योंकि कदम मिलाकर चलने से एक ऐसी ताल मय ध्वनि उत्पन्न होती है जो अगर उलट पड़े तो पुल को नष्ट कर सकती है। शब्द एक शक्तिमान तत्त्व है। बिजली की तड़कन के शब्द से बड़ी बड़ी आलीशान

कोठियाँ फट जाती हैं, धड़ाके की आवाज़ से कानों के पर्दे फट जाते हैं, पक्के मकान में ज़ोर से बोलने पर सारा मकान झनझनाने लगता है, काँसे की थाली के पास ज़ोर से शब्द किया जाय तो थाली झङ्कारने लगती है, शंखकी ध्वनि से वैक्टीरिया कीड़े मर जाते हैं। जीवित प्राणियों पर भी ध्वनि का ऐसा ही प्रभाव होता है। बहेलिये लोग बीन बजा कर हिरन को ऐसा मस्त कर लेते हैं कि वह भागना भूल जाता है फिर उसे पकड़ कर वे मार डालते हैं। सर्प की बांबी पर सपेरे लोग बीन बजाते हैं वह संगीत के लोभ कोसंवरण न करके मुग्ध होता हुआ बांबी से बाहर निकलता है और पकड़ा जाता है। युद्ध के बाजे कायरों में भी जोश भर देते हैं। खुशी और उत्सवों के अवसर पर बाजे इसलिए बजाये जाते हैं ताकि मनोमुग्धकारी भावनाएँ और अधिक बढ़ जावें ख़ुशी का और अधिक मात्रा में अनुभव किया जा सके।

हमारे तत्वदर्शी ऋषि, महर्षि, संगीत के लाभों से भील प्रकार परिचित थे। उन्होंने सामवेद को गाया और जाना कि गान विद्या भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में निस्सन्देह सरसता उत्पन्न करने वाली है। वेद मन्त्रों को घास काटने की तरह नहीं पढ़ा जाता वरन् एक एक शब्द को सस्वर उच्चारण करने का नियम है। मन्त्रों के अर्थों में जैसी महानता है वैसी ही महत्ता उनके सस्वर उच्चारण में है। इस उच्चारण से एक ऐसी स्वर लहरी का आविर्भाव होता है जो अनेक दृष्टियों से हमारे लिये लाभदायक है। इस स्वर की उपेक्षा करने से गलत रीति से उच्चारण करने पर अनिष्ट भी हो सकता है। कथा है कि त्वष्टा ऋषी से मंत्रोचार में एक स्वर की गलती हुई थी उसका फल बड़ा विपरीत हुआ। त्वष्टा इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा करना चाहते थे किन्तु स्वर सबंधी उच्चारण की गलती से इन्द्र जिसे मार डाले ऐसा वृत्र नामका महाअसुर पैदा हुआ। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि स्वर लहरियों की शक्तियां असाधारण हैं और उनके रहस्य को जानकर भारतीय ऋषि मंत्र शक्ति से बड़े बड़े ग्रर्थों का संपादन करते थे।

सर्प के काटे हुओं को काँसी की थाली बजा कर अच्छा किया जाता है। कंठ माला, विषबेल, सरीखे जहरीले फोड़े भी संगीत की सहायता से अच्छे होते हैं। भूतोन्माद सरीखे मस्तिष्क संबंधी रोगों का संगीत द्वारा इलाज किया जाता है। स्नायविक बीमारियों में डाक्टर लोग संगीत सुनना बहुत लाभदायक बताते हैं। मैस्मरे जम विद्या के आविष्कार डाक्टर मैस्पर अपनी विधि के अनुसार जब रोगियों की चिकित्सा करते थे तो वे आरंभ में बड़े मधुर संगीत का वादन कराते थे जिससे पीड़ितों का स्नायु समूह कोमल होजाय और उन पर प्रयोग करने में सुभीता रहे ध्वनि युक्त सरस स्वर लहरी के आघात प्रतिघातों से रक्त के श्वेत और भूरे जीवन कणों में एक नवीन चेतना आती है एक नवीन स्फुरण होता है जिससे वे अपनी गिरी हुई अवस्था से उठने के लिए एक बार पुन- संघर्ष आरंभ करते हैं इस प्रयत्न में अनेक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिलती है। बड़े बड़े कठिक रोग अच्छे हो जाते हैं एवं गिरे हुए स्वास्थ्य सुधर जाते हैं। (अपूर्ण)

पाठकों को आवश्यक सूचनायें

(१) सन् ४४ के अब सिर्फ दो मास शेष हैं। अब चालू मास से ग्राहक न बनना चाहिये। जिन्हें ग्राहक बनना हो उन्हें जनवरी सन् ४५ से पत्रिका चालू कराने के लिये ही चन्दा भेजना चाहिये।

(२) सन् ४५ से अखंडज्योति का चन्दा २) वार्षिक होगा। कागज छपाई की मँहगाई कई गुनी होजाने के कारण विवश होकर यह वद्धि हमें करनी पड़ रही है।

— मैनेजर अखण्ड-ज्योति

अपनी खोज ।

(श्री० गोपाल शरण सिंहजी)

अपने से ही मैं करता हूं प्रश्न कि—मैं हूं कौन ?
फिर मैं क्या इसका उत्तर दूँ, क्यों न रहूँ मैं मौन ?
अपने को ही क्या बतलाऊँ मैं अपना ही नाम ?
क्या मैं अपना ग्राम बताऊँ क्या बतलाऊँ धाम ?

क्या है नहीं सोचिए मन में यह अचरज की बात ?
मेरे ही दृग देख न सकते हैं मेरा ही गात ।
किस मतलब के लिए न जाने हैं ये मेरे कान ?
कभी न सुन सकते हैं पल भर ये मेरे ही गान ।

छिपी सदा रहती है मुझ में अद्भुत शक्ति महान ।
पर न कभी आता है उसका मेरे मन में ध्यान ॥
मैं हूं मुक्त तथापि देखिये क्या है मेरा हाल ।
अखिल बन्धनों से रहता हूं बँधा हुआ सब काल ॥

सदा ध्यान में ही मैं अपने रहता अन्तर्धान ।
तो भी नहीं जान सकता मैं अपना वासस्थान ॥
मैं क्या हूँ इसका होता है मुझे कदापि न ज्ञान ।
कभी नहीं मैं कर पाता हूं आत्म सुधारस पान ॥

होते हैं आलोकित जिससे मही और आकाश ।
रहता है अन्तर्हित मुझ में वह भी दिव्य प्रकाश ॥
चिदानन्द होकर भी मैं हूं रहता सतत उदास ।
नित्य छिपा रहता है मुझ से निज उरका उल्लास ॥

आत्म विषय में मैं करता हूँ, कितने ही अनुमान ।
कुछ का कुछ मैं सोच सोचकर होता हूं हैरान ॥
जहां तहां मैं भटक रहा हूं क्यों यों अन्ध समान ?
अपने को ही खोज रहा मैं हूं कैसा नादान ?

—ज्योतिष्मती